THE TIMES OF INDIA

Date: 22-08-24

Fix fixed deposits

Deposits not keeping up with loans is a problem that needs a rethink on tax front

TOI Editorials

Nirmala Sitharaman's call to state-run banks to step up deposit mobilisation puts the spotlight on an issue RBI has flagged in recent weeks. Growth in deposits has been lagging loan growth over successive quarters, clocking 10.6% year-on-year in July-end compared to 13.7% for loans. This poses a systemic risk, as banks are forced to rely on higher-cost market borrowings and other instruments to raise funds. That we have a problem at hand is also confirmed by a report that found bank deposits losing their appeal among younger people. Given the low post-tax returns from deposits, the young are increasingly preferring riskier assets like mutual funds and equities. In fact, nearly 47% of term deposits are now held by senior citizens.

Tax a dampener | Some of this is understandable given the growing shift from savings to investment in India. But part of the problem lies with govt and banks not doing enough to make deposits attractive to bank customers. The same study found that taxation has a net impact of 7% on bank deposits. The chairman of SBI, country's largest bank, have stressed the need to offer tax relief on income from deposits. So, it would be best if bank deposits were treated as a separate asset class and offered tax waiver. Considering the vital role they play in mobilisation of funds for the system, wouldn't it more than offset revenue loss for govt? As things stand, deposits do not even enjoy tax parity with other asset classes. For instance, while other asset classes are taxed on redemption, deposit income is taxed on accrual basis.

Products not attractive enough | Lack of innovation and flexibility in deposit offerings contributes to the problem. Banks seem keener on selling third-party products these days than selling FDs to customers. Term deposits serve as an insurance for Indians against exigencies. But rules for breaking long-tenure FDs can be harsh. Significantly, share of low-cost current account savings account (CASA) deposits has fallen to 39% in current fiscal from 43% last year. FM has described smaller deposits as "bread and butter" of the banking system and wants banks to reach out to customers in rural and semi-urban areas. Problem is we are in a country with a jobs crisis and stagnant or falling wages. The number of bank deposits may have grown substantially in recent years, but that 35% of bank accounts in India are inactive tells you the story.

THE ECONOMIC TIMES

Date: 22-08-24

Change the Dynamics Of 'Protesters-Police'

ET Editorials

The word 'protesters' conjures up insidious and inciteful images among not just members of our state machinery but also among many within civil society. 'Police', in the context of protests, has a similar effect, with notions of 'needful' acts of aggression jostling with those of 'needless' rampage. Both descriptions, as the Supreme Court on Tuesday reminded us in the context of 'police action' taken during peaceful protests in Kolkata against the RG Kar Hospital rape-murder case, are caricatures. The 'power of the state must not be unleashed on peaceful protesters', the court stated, urging law enforcement agencies to handle such situations 'with sensitivity'.

The home ministry's 1985 Code of Conduct for Indian Police mandates that while enforcing the law, 'methods of persuasion, advice, and warning' should be used as much as possible, and if force is unavoidable, it should be the 'irreducible minimum'. But 'paper' deviates from practice, on far too many occasions — during the latest protests, earlier ones against farm laws, or wrestlers' agitation against sexual harassment. The problem stems from the protesters-police dynamic still being seen through a British India colonial 'control-command' lens where protesters, non-violent or not, need to be 'broken up', rather than be allowed to air their grouses in a democratic free space. Despite legal protections, lathi-charging, water-cannoning and using force to remove agitators is considered kosher as primary course of action for the police.

Protests can — and do — go violent. But cracking down can't be the first port of call for law enforcement. Yes, this isn't as easy as it sounds. But, then, the difference between, say, a China and a non-police state should remain as stark as possible.

दैनिक भास्कर

Date: 22-08-24

रूस के बाद मोदी की यूक्रेन यात्रा के क्या मायने हैं?

शशि थरूर, (पूर्व केंद्रीय मंत्री और सांसद)

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी यूक्रेन के दौरे पर निकल चुके हैं। मॉस्को में रूसी राष्ट्रपति व्लादीमीर पुतिन के साथ उनकी विवादास्पद मुलाकात को अभी एक महीने से थोड़ा अधिक ही समय हुआ है। वह भेंट-वार्ता तब हुई थी, जब वॉशिंगटन में नाटो का शिखर सम्मेलन चल रहा था।मोदी द्वारा पुतिन को गले लगाने की तस्वीरों ने तब यूक्रेन में व्यापक आक्रोश पैदा किया था, क्योंकि उसी दिन रूस ने कीव में बच्चों के एक अस्पताल पर बमबारी की थी और यूक्रेन में हवाई हमलों में कम से कम 42 नागरिकों को मार डाला था। यूक्रेन के राष्ट्रपति जेलेंस्की ने इस भेंट-वार्ता को शांति प्रयासों के लिए झटका बताया था। तो अब मोदी यूक्रेन क्यों जा रहे हैं?

वास्तव में यूक्रेन युद्ध शुरू होने के बाद से ही भारत ने बहुत कड़ा संतुलन साधने की कोशिश की है। इन दो वर्षों की अवधि में भारत ने रूस के साथ अपने पुराने संबंधों के साथ ही संयुक्त राष्ट्र चार्टर के प्रति अपने समर्थन को कायम रखने के बीच संतुलन बनाने के लिए संघर्ष किया है।संयुक्त राष्ट्र चार्टर सम्प्रभु राष्ट्रों की सीमाओं के सम्मान और अंतरराष्ट्रीय संबंधों में बल प्रयोग पर रोक जैसे सिद्धांतों को सामने रखता है। लेकिन अगर भारत रूस से बिगाड़ नहीं करना चाहता तो यह भी समझा जा सकता है। भारत अपने 40% से ज्यादा हथियार रूस से खरीदता है।यह ठीक है कि समय के साथ इसमें कमी आ रही है, क्योंकि भारत अब अमेरिका, फ्रांस, इजराइल और अन्य पश्चिमी देशों से भी तेजी से हथियार खरीद रहा है। लेकिन अतीत की विरासत वर्तमान पर भारी पड़ रही है : भारत के 86% सैन्य उपकरण रूसी मूल के हैं, और उनके स्पेयर पार्ट्स अभी भी उसके लिए जरूरी हैं।

दूसरी तरफ, पश्चिमी प्रतिबंधों के चलते रूस के साथ भारत के ऊर्जा-संबंध और भी गहरा गए। आकर्षक छूट के कारण भारत द्वारा रूसी कच्चे तेल का आयात 2021-22 में 2.4 अरब डॉलर से बढ़कर 2023-24 में 46.5 अरब डॉलर का हो गया।रूस अब भारत का प्रमुख तेल और गैस का आपूर्तिकर्ता बन गया है और इस व्यवस्था को पश्चिमी देश, यह मानते हुए कि भारत की खरीद वैश्विक तेल कीमतों में उछाल को रोक रही है, चुपचाप स्वीकार करते हैं।

इन्हीं सब कारणों से भारत ने अब तक यूक्रेन-युद्ध के लिए रूस की आलोचना करने से इनकार किया है, यूक्रेन में संघर्ष-विराम के लिए संयुक्त राष्ट्र महासभा के प्रस्तावों पर वोटिंग से परहेज किया है। यहां यह उल्लेखनीय है कि मोदी की मॉस्को यात्रा के बाद भारत-रूस के संयुक्त बयान में 'यूक्रेन के आसपास' हो रहे संघर्ष का उल्लेख किया गया था, 'यूक्रेन में' हो रहे संघर्ष का नहीं, जिसका अर्थ था कि भारत यूक्रेन की धरती पर रूस के कुछ क्षेत्रीय दावों को मान्यता भी देता है।

लेकिन भारत ने रूसी आक्रमण का समर्थन नहीं करने को लेकर भी सावधानी दर्शाई है। 2022 और 2023 में, मोदी ने द्विपक्षीय शिखर सम्मेलनों के लिए मॉस्को की यात्रा करने से इनकार कर दिया था। सितंबर 2022 में, उज्बेकिस्तान में शंघाई सहयोग संगठन के शिखर सम्मेलन में, उन्होंने पुतिन से खुले तौर पर कहा था कि आज का युग युद्धों का युग नहीं है।मोदी ने मॉस्को की अपनी यात्रा के दौरान भी इन भावनाओं को दोहराया और कहा कि युद्ध का समाधान युद्ध के मैदान में नहीं पाया जा सकता है। जहां अमेरिकी सरकार ने भारत के इस संतुलनकारी रवैए को स्वीकार किया है, वहीं उसने मोदी की मॉस्को यात्रा पर भारत सरकार के साथ अपनी निराशा भी साझा की।अमेरिका ने दशकों से भारत को चीन के साथ बढ़ते टकराव में अपना एक लोकतांत्रिक सहभागी माना है, और रूस के साथ भारत के संबंध दोनों के बीच दरार पैदा कर सकते हैं।

जुलाई में भारत-रूस के संयुक्त वक्तव्य में संयुक्त राष्ट्र चार्टर के आधार पर शांति प्रस्तावों का स्वागत किया गया था।मोदी अपनी यूक्रेन यात्रा का उपयोग इसकी हकीकत का पता लगाने के लिए कर सकते हैं। मोदी यूक्रेन को मानवीय सहायता भी प्रदान कर सकते हैं। युद्ध शुरू होने के तुरंत बाद भी भारत ने यूक्रेनी सरकार को 90 टन राहत सामग्री भेजी थी। मोदी की यूक्रेन यात्रा पर रूस की ओर से नकारात्मक प्रतिक्रिया मिलने की संभावना है, ठीक वैसे ही जैसे उनकी मॉस्को यात्रा से अमेरिका नाराज हुआ था।

भारतीय कूटनीति के लिए चुनौती यह है कि वह अपने निजी संदेशों को दोनों देशों की चिंताओं को दूर करने के लिए किस तरह से संतुलित करे, साथ ही इस यात्रा को एक साहसिक नई पहल के रूप में कैसे पेश करे। ऐसा सफलतापूर्वक कर पाना भारत के लिए एक भू-राजनीतिक जीत होगी।

दैनिक जागरण

Date: 22-08-24

बांग्लादेश में भारत के विकल्प

आर. विक्रम सिंह, (लेखक पूर्व सैनिक एवं पूर्व प्रशासक हैं)

पचास वर्षों की आजादी के बाद बांग्लादेश वापस पूर्वी पाकिस्तान बनने की दिशा में चल पड़ा है। इसके केंद्र में जमात-ए-इस्लामी और रजाकार हैं। इनका लक्ष्य हिंदू समाज भी है। इस अभियान में विदेशी शक्तियों की भूमिका भी सामने आ रही है। कहा जा रहा है कि बांग्लादेश का सेंट मार्टिन द्वीप न मिलने के कारण उन्होंने हसीना सरकार को बर्खास्त करा दी।उनका एक उद्देश्य शेख हसीना को बेदखल कर वहां भारत विरोधी शक्तियों को सशक्त करना भी था। पूर्वोत्तर में ईसाई राज्य की स्थापना भी उनका एक एजेंडा है। फिलहाल इस पहले राउंड में वे सफल होते दिख रहे हैं, लेकिन उनका खेल सामने आ गया है। वर्ष 1975 में इंदिरा गांधी प्रधानमंत्री थीं, जब बांग्लादेश में शेख मुजीब की परिवार सहित सेना और मजहबियों के गठजोड़ ने हत्या की थी।तब बांग्लादेश में भारत का तत्काल दखल देना बनता था। दिया भी, लेकिन इंदिरा गांधी पर्याप्त साहस नहीं दिखा सकीं। उनके पास बांग्लादेश का भटकाव रोकने और वहां के अल्पसंख्यकों को

सुरक्षित करने का आदर्श अवसर था। उनकी अनदेखी का नतीजा है कि आज बांग्लादेश में हिंदुओं की स्थिति भयावह होने की तरफ बढ़ रही है।इसके कारण हिंदू बड़ी संख्या में भारत आना चाहते हैं, लेकिन बीएसएफ द्वारा उन्हें रोका जा रहा है। एक अच्छी बात यह हुई कि हत्या, आगजनी, लूटपाट, मंदिर ध्वंस के मध्य हिंदू समाज ने ढाका की सड़कों पर प्रदर्शन करने का साहस किया। हालांकि दूसरे ही दिन इसकी प्रतिक्रिया में इस्लामिस्टों द्वारा प्रदर्शन किया गया। इससे वहां की विषम स्थितियों का आभास होता है।बांग्लादेश में हिंदुओं पर हमले का सिलसिला थमा नहीं हैं। ऐसी स्थिति में भारत द्वारा बांग्लादेश शासन को सचेत करना चाहिए कि बांग्लादेशी हिंदू भारतीय की सीमा को पार नहीं करेंगे, लेकिन वे वापस हिंसक माहौल में नहीं भेजे जा सकते। अच्छा होगा कि भारत सरकार की व्यवस्था में बांग्लादेश की सीमा के अंदर ही शरणार्थी कैंप बनें। दोनों तरफ की सेनाएं शरणार्थियों की व्यवस्था के लिए बांग्लादेश की सीमा के इलाकों की प्रशासनिक सुविधाओं का उपयोग करें।

बांग्लादेश में हिंदू आबादी 1947 (तब पूर्वी पाकिस्तान) में 28 प्रतिशत से घटकर आज 7.5 प्रतिशत रह गई है। बांग्लादेश बनते समय वहां हिंदू 15 प्रतिशत बचे थे। यह भी अजीब है कि 75 वर्षों की लगातार प्रताड़ना एवं अत्याचार के बावजूद वहां के हिंदू समाज ने कभी आजादी की मांग नहीं की, कोई प्रतिरोध मोर्चा, सशस्त्र सेना नहीं बनाई। 1.3 करोड़ के संख्याबल के बावजूद वे कश्मीरी पंडितों के समान जीवन व्यतीत करते रहे। उनमें कोई राष्ट्रीय नेतृत्व नहीं उभरा, कोई हथियारबंद संगठन नहीं बनी, जबकि वे इजरायल के यहूदियों से संख्याबल में दोगुने हैं।

एक बड़ी और अवैध बांग्लादेशी आबादी भारत में निवास कर रही है और वहां बांग्लादेश के हिंदू मजहबी कट्टरता के शिकार हो रहे हैं। बांग्लादेश के हिंदुओं के मानवाधिकार हनन की जो वीभत्स स्थितियां हैं, वे हमारे भी राष्ट्रीय विमर्श का हिस्सा नहीं बन पातीं। सेक्युलरिज्म से बीमार हमारे नेताओं ने भी कभी उनका मुद्दा नहीं उठाया। अब भी नहीं उठा रहे हैं। ऐसे में भारत के सामने रास्ता क्या है? कट्टर मजहबियों की जकड़न से बांग्लादेश के हिंदू समाज की मुक्ति एकमात्र लक्ष्य होना चाहिए।मुक्ति के रास्तों पर कोई फूल नहीं बिछे होते। वह संघर्ष और बलिदान से होकर आता है। बांग्लादेश में एक अल्पसंख्यक राजनीतिक दल का गठन समाधान के रास्ते का पहला पड़ाव है। आगे संघर्ष प्रारंभ होंगे। संघर्षों की सफलताएं हमें हमारे दूसरे कदम यानी स्वशासी स्वायत्त हिंदू परिक्षेत्रों के गठन की राह खोलेंगी। अल्पसंख्यक वर्ग को अपनी आबादी के सुरक्षित क्षेत्रों की ओर प्रस्थान करके अपने संख्याबल को एकत्रित करना होगा। फिर वहां से आगे की रूपरेखा बननी प्रारंभ होगी।यहां भारत की भूमिका 1971 की तरह सफलता एवं असफलता में निर्णायक सिद्ध होगी। इससे भारत की चिकेन नेक जैसी रणनीतिक समस्याओं का समाधान भी होगा। चटगांव एवं रंगपुर के क्षेत्रों को स्वायत्त हिंदू क्षेत्र बना कर वहां हिंदुओं को स्थानांतरित किया जाना संभव तभी हो सकेगा, जब भारत की इसमें भूमिका होगी।

1947-48 के युद्ध के समय पाकिस्तान ने कश्मीर में हमारी 85 हजार वर्ग किमी भूमि पर कब्जा कर लिया था। उस समय यदि नेहरू चाहते तो उसकी प्रतिक्रिया में पूर्वी पाकिस्तान के रंगपुर, सिलहट, चटगांव के इलाके अपने अधिकार में आसानी से लिए जा सकते थे। ये स्थायी रूप से भारत से जुड़े हुए क्षेत्र पूर्वी पाकिस्तान के अल्पसंख्यक हिंदू समाज के लिए सुरक्षित परिक्षेत्र बन सकते थे, लेकिन हमारे तुष्टीकरणजीवी नेता रणनीतिक बुद्धि-चातुर्य नहीं दिखा पाए। अब समाधान संघर्ष और बलिदानों से ही संभव है। न भूलें जब इजरायल देश बना और सिर पर युद्ध आ गया तो यहूदी जबर्दस्त लड़ाके बने।

विश्व में सुरक्षित परिक्षेत्र जैसी व्यवस्थाओं के अनेक उदाहरण हैं। रूस ने एक वर्ष पहले डोनबास में दो स्वायत्त परिक्षेत्र के गठन की घोषणा की। कुछ इसी तरह बांग्लादेश के रंगपुर डिविजन के 17,000 वर्गकिमी एवं चटगांव डिविजन के

34,500 वर्ग किमी क्षेत्रों को अधिकार में लेकर वहां के समस्त 1.3 करोड़ हिंदुओं के समायोजन की व्यवस्था करना हमारा लक्ष्य होना चाहिए। कभी जिन्ना ने कहा था कि हिंदू-मुसलमान अलग राष्ट्र हैं, वे साथ नहीं रह सकते। यही पाकिस्तान के गठन का आधारभूत सिद्धांत बना।वही तर्क इस्लामी बांग्लादेश में भी लागू करने का समय आ गया है। 1950 में हुए ढाका के भीषण दंगों में दस हजार हिंदुओं की नृशंस हत्या से सरदार पटेल इतने व्यथित हो गए थे कि उन्होंने पूर्वी पाकिस्तान की भूमि पर कब्जा कर वहां हिंदुओं को बसाने की चेतावनी तक दे दी थी। आज इतने वर्षों बाद 1971 के बांग्लादेश युद्ध जैसी स्थितियां पुन: बन रही हैं।अंतर यह है कि जो पिछला अभियान था, वह बांग्लादेश की आजादी का था और अगला अभियान बांग्लादेशी अल्पसंख्यकों की स्वतंत्रता और मजहबी शोषण एवं प्रताड़ना से मुक्ति के लिए होना चाहिए। यह एक बड़ा राजनीतिक निर्णय होगा, जो भारत की बांग्लादेश समस्या और चीन, पाकिस्तान एवं अमेरिका की कुटिल चालों की आशंका का स्थायी अंत कर देगा।

Date: 22-08-24

सहकारी क्षेत्र में नई जान फूंकते पैक्स

शाजी के वी, (लेखक राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक-नाबार्ड-के अध्यक्ष हैं)

दुनिया भर में 'अंतरराष्ट्रीय सहकारिता वर्ष-2025' के स्वागत की तैयारियां जोर-शोर से चल रही हैं। यह ऐसे समय में हो रहा है, जब भारत का सहकारिता क्षेत्र मजबूत स्थिति में है और देशभर में नई, मजबूत एवं तेजी से उभरती हुई प्राथमिक कृषि ऋण समितियों यानी पैक्स का प्रसार हो रहा है।आर्थिक और प्रशासनिक सुधारों से लैस ये पैक्स अब ग्रामीण और कृषि प्रधान भारत में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के 'सहकार से समृद्धि' के सपने को साकार करने के लिए पूरी तरह तैयार हैं। यद्यपि भारत में सहकारिता का गौरवशाली इतिहास रहा है, लेकिन कुप्रबंधन, संकट के समय पर्याप्त सरकारी समर्थन की कमी और आवश्यक सुधारों की अनुपस्थिति के कारण इसका विकास बाधित रहा है।हालांकि प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी द्वारा अपने दूसरे कार्यकाल में सहकारिता मंत्रालय का गठन करने और गृहमंत्री अमित शाह को इसकी कमान सौंपने के तुरंत बाद सहकारिता क्षेत्र में बदलाव की बयार बहने लगी। सहकारिता की क्षमता को अब देश के भविष्य को आकार देने वाले क्षेत्र के रूप में देखा जा रहा है।अमित शाह सहकारिता क्षेत्र के पुराने जानकार हैं। वह सहकारिता क्षेत्र के विकास में बाधा डालने वाले कारणों से अच्छी तरह परिचित हैं। इन बाधाओं में पैक्स के विविधीकरण की कमी थी, जिसने उन्हें लगभग अव्यवहार्य बना दिया था।अमित शाह ने पैक्स के लिए जो सबसे महत्वपूर्ण कार्य किया, वह उनके बायलाज यानी उप-नियमों में बदलाव लाना था। पैक्स की समस्याओं से छुटकारे के लिए माडल बायलाज लाकर उन्हें बहुद्देश्यीय बनाने पर जोर दिया जा रहा है। इससे पैक्स को अपने व्यवसाय को 25 से अधिक व्यावसायिक गतिविधियों से जोड़कर विविधता लाने में मदद मिली है।अब वे कामन सर्विस सेंटर के रूप में काम कर रहे हैं, जो ग्रामीण भारत में 300 से अधिक ई-सेवाएं जैसे-बैंकिंग, बीमा, आधार नामांकन/अपडेशन, स्वास्थ्य सेवाएं, पैन कार्ड और आइआरसीटीसी/बस/हवाई

टिकट आदि सेवाएं प्रदान कर रहे हैं। अब तक 35,000 से अधिक पैक्स ने ग्रामीण नागरिकों को ये सेवाएं प्रदान करना शुरू कर दिया है।इसके साथ ही अब उन्हें प्रधानमंत्री किसान समृद्धि केंद्र, जल समितियों, एलपीजी वितरकों, खुदरा पेट्रोल/डीजल दुकानों, किसान उत्पादक संगठनों आदि के रूप में कार्य करने में भी सक्षम बनाया जा रहा है। पैक्स अब गांवों में सस्ती दरों पर गुणवत्ता वाली जेनेरिक दवाओं के वितरण के लिए प्रधानमंत्री भारतीय जन औषधि केंद्र के रूप में भी काम कर रहे हैं, जिससे ग्रामीण आबादी के लिए सस्ती दवाएं उपलब्ध कराते हुए आय का एक और स्रोत पैदा हो रहा है। ये सभी प्रयास पैक्स की आय बढ़ाने और उन्हें आर्थिक रूप से व्यवहार्य बनाने के लिए किए जा रहे हैं।

सहकारिता मंत्रालय का अगला महत्वपूर्ण कार्य इस क्षेत्र में लोगों का विश्वास जीतना है, जो दशकों से कुप्रबंधन से ग्रस्त था। इसमें पारदर्शिता सुनिश्चित करने के लिए 63,000 पैक्स का कंप्यूटरीकरण किया जा रहा है। अब तक 23 हजार से अधिक पैक्स को एंटरप्राइज रिसोर्स प्लानिंग साफ्टवेयर के साथ एकीकृत किया भी जा चुका है। पैक्स के कंप्यूटरीकरण से उन्हें सीधे राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक यानी नाबार्ड से जोड़ा जा सकेगा। कामन अकाउंटिंग सिस्टम और मैनेजमेंट इन्फार्मेशन सिस्टम से संचालन में एकरूपता आएगी।इससे पैक्स संचालन में जनता का विश्वास बढ़ेगा। सहकारिता क्षेत्र में हुई इन अनूठी पहलों से यह क्षेत्र अब नए आत्मविश्वास के साथ पूरे देश में संगठित रूप में काम कर रहा है, जो इसके लिए बहुत फायदेमंद है। सहकारिता मंत्री के रूप में अमित शाह ने अब सहकारी क्षेत्र से जुड़े सभी लोगों से जिला सहकारी बैंकों में बैंक खाते खोलने का आह्वान किया है, ताकि उन्हें व्यवहार्य बनाया जा सके।उनके अनुसार, सहकारी समितियों के बीच सहयोग एक मजबूत आर्थिक सिद्धांत है, जो मजबूत सहकारी क्षेत्र के निर्माण के लिए जरूरी है। वर्ष 2024 में सहकारिता मंत्रालय का दूसरी बार कार्यभार संभालते हुए अमित शाह ने जमीनी स्तर पर नीतियों को प्रभावी ढंग से लागू करके इस क्षेत्र को मजबूत करने का संकल्प लिया है। इसके साथ ही उन्होंने कहा है कि उनके पिछले कार्यकाल में नीतिगत ढांचा बनाने पर ध्यान केंद्रित किया गया था और वर्तमान कार्यकाल में उनकी प्राथमिकता इन नीतियों को जमीनी स्तर तक ले जाने की होगी।

सहकारिता मंत्रालय द्वारा की गई सबसे महत्वपूर्ण पहल में से एक सहकारी क्षेत्र में 'विश्व का सबसे बड़ा विकेंद्रीकृत अनाज भंडारण कार्यक्रम' है। इस योजना का उद्देश्य पैक्स स्तर पर अनाज भंडारण के लिए विकेंद्रीकृत गोदाम, कस्टम हायरिंग सेंटर, प्राथमिक प्रसंस्करण इकाइयां और अन्य कृषि अवसंरचनाएं बनाना है। इन गोदामों का उद्देश्य कृषि और इससे जुड़े कामों के लिए इस्तेमाल करना है।कृषि अवसंरचना कोष, कृषि विपणन अवसंरचना, कृषि यंत्रीकरण पर उप-मिशन, प्रधानमंत्री सूक्ष्म खाद्य प्रसंस्करण उद्यमों का औपचारिकीकरण आदि सरकार की विभिन्न कार्यक्रमों को मिलाकर इस योजना का उद्देश्य देश के लिए एक विशाल भंडारण क्षमता का निर्माण करना है। इससे खाद्यान्न की बर्बादी और परिवहन लागत में कमी आएगी, किसानों को उनकी उपज के बेहतर दाम मिलेंगे और विभिन्न कृषि जरूरतों को पैक्स स्तर पर ही पूरा किया जा सकेगा।

चूंकि पैक्स ग्रामीण विकास की रीढ़ हैं। इसलिए इनके सुदृढ़ीकरण और पुनरुद्धार से बहुत जल्द ही ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास को बढ़ावा मिलेगा। पैक्स से जुड़ी गतिविधियों के बढ़ने से जहां मौसमी बेरोजगारी खत्म होने की उम्मीद की जा रही है, वहीं इससे करीब एक लाख पैक्स से सीधे जुड़े 13 करोड़ किसानों को विशेषरूप से ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार और आय सृजन में फायदा होगा।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 22-08-24

नौकरियां और विकास: अच्छी और बुरी खबरें

अजय मोहंती, (लेखक फोर्ब्स मार्शल के को-चेयरमैन और सीआईआई के पूर्व अध्यक्ष हैं)

हमारी आकांक्षा 2047 तक विकसित देश बनने की है। किसी विकसित या उच्च आय वाले देश का प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद यानी जीडीपी करीब 14,000 डॉलर होता है यानी 2,700 डॉलर के हमारे वर्तमान प्रति व्यक्ति जीडीपी के पांच गुने से भी अधिक। उस स्तर तक पहुंचने के लिए हमें अगली चौथाई सदी तक वृद्धि दर को मौजूदा दर से दो फीसदी अधिक यानी करीब 8.5 फीसदी पर रखना होगा।

वृद्धि और रोजगार आपस में जुड़े होते हैं। जैसे-जैसे देशों का विकास होता है वैसे-वैसे वृद्धि सबसे नाटकीय कारक के रूप में लोग कृषि जैसे कम उत्पादकता वाले काम से विनिर्माण और सेवा क्षेत्र जैसे अधिक उत्पादकता वाले पेशों में जाने लगते हैं। जब किसी किसान का बेटा चेन्नई में जोहो, पुणे में जोमैटो या बेंगलूरु में टाटा इलेक्ट्रॉनिक्स में काम करने जाता है तो परिवार की आय में हुआ इजाफा सीधे जीडीपी में नजर आता है। आय में इस वृद्धि से अर्थव्यवस्था में इजाफा होने लगता है क्योंकि परिवार छुट्टियों से लेकर प्रोसेस्ड फूड तक सभी की खपत करने लगता है।

बीते 30 सालों से हमारे जीडीपी में वृद्धि खपत के बल पर हुई है। इसी तरह जब हम शहरों से गांवों की ओर उलटा पलायन देखते हैं तो आर्थिक वृद्धि पर असर होता है। पिछले चार साल में कृषि और अनौपचारिक ग्रामीण स्वरोजगार सेवाओं में दो करोड़ रोजगार शामिल हुए हैं। हमें देखना होगा कि दशकों तक कम उत्पादकता वाले ग्रामीण रोजगारों से उच्च उत्पादकता वाले शहरी रोजगारों तक पलायन हुई। हाल के दिनों का उलटा रुझान विकास की नाकामी को दिखाता है।

जुलाई में आई आर्थिक समीक्षा बताती है कि 56.5 करोड़ के हमारे कुल श्रम बल में 46 फीसदी कृषि में, 11 फीसदी विनिर्माण में, 13 फीसदी निर्माण कार्यों में और 29 फीसदी सेवा क्षेत्र यानी व्यापार, होटल तथा परिवहन आदि में है।

कृषि 46 फीसदी रोजगार देता है किंतु जीडीपी में उसका योगदान केवल 18 फीसदी है। कृषि में इतने लोगों की आवश्यकता नहीं है। रूमानियत से परे देखें तो अधिकतर किसान खेती छोड़ना चाहते हैं। तकनीक के मामूली इस्तेमाल के साथ हम इतना ही अनाज एक चौथाई किसानों के बल पर भी उगा सकते हैं।

समीक्षा में कृषि क्षेत्र से बाहर सालाना 80 लाख रोजगार तैयार करने की बात कही गई है। इसके लिए तार्किक अनुमानों का सहारा लिया गया है। श्रम बल में पुरुषों की भागीदारी मौजूदा स्तर यानी 54 फीसदी पर ही बनी रहेगी। महिलाओं की भागीदारी मौजूदा 27 फीसदी से हर साल 1 फीसदी बढ़ती जाएगी। यह दर कम प्रतीत होती है लेकिन बीते 30 वर्ष दिखाते हैं कि शहरों में महिलाओं के लिए रोजगार तैयार करने में हमारा प्रदर्शन कमजोर रहा है। हर वर्ष कम से कम एक फीसदी लोगों को कृषि से विनिर्माण और सेवा में आना चाहिए। यह भी कम लगता है लेकिन बीते 23 सालों में इसका बड़ा प्रभाव हुआ है। हमें नहीं पता कि ग्रामीण इलाकों में कितने लोग रहते हैं। 2011 की जनगणना के मुताबिक

70 फीसदी लोग गांवों में रहते थे। 2021 की जनगणना में बहुत देर हो चुकी है किंतु अनुमान है कि अब 60 फीसदी लोग ही गांवों में रहते होंगे। शेष 10 फीसदी वहां से निकलकर महानगरों नहीं बल्कि छोटे शहरों में रहने लगे होंगे।

यह अनुमान अच्छी खबर लाता है। श्रम बल में नए लोगों का शामिल होने और कृषि से दूर होना सीधे जीडीपी बढ़ाता है। समीक्षा यह भी दिखाती है कि रोजगार में सर्वाधिक वृद्धि निर्माण में तथा लॉजिस्टिक्स तथा कंपनियों के भीतर ठेके पर काम करने वाले कर्मचारियों में हुई है। निर्माण क्षेत्र में अधिकांश रोजगार ठेके पर होता है। ये बहुत स्तरीय काम नहीं हैं लेकिन उत्पादक हैं और कृषि की तुलना में अधिक आय प्रदान कराते हैं। विनिर्माण और सेवा के क्षेत्र में 80 लाख से अधिक नौकरियां अगले 23 साल में हर वर्ष जीडीपी में तीन चौथाई से एक प्रतिशत तक वृद्धि करेंगी। 2047 तक यह विकसित भारत का लक्ष्य हासिल करने में जो फासला है, उसका आधा तो इससे ही दूर हो जाएगा।

यह तो हुई अच्छी खबर। बुरी खबर यह है कि एक साल में कृषि से बाहर 80 लाख रोजगार हम कभी तैयार नहीं कर पाए। समीक्षा बताती है कि कृषि प्रसंस्करण और केयर इकॉनमी यानी बच्चों, महिलाओं, बुजुर्गों, दिव्यांगों आदि की देखभाल से संबंधित सेवाओं में संभावनाएं हैं। इन क्षेत्रों में बहुत गुंजाइश है।

इस वर्ष के बजट में मौजूदा कंपनियों में रोजगार बढ़ाने के तीन तरीके अपनाने का प्रयास किया गया है: पहले माह का वेतन बतौर सब्सिडी देना, नए कर्मचारियों की भर्ती के बाद पहले दो साल उनकी भविष्य निधि की राशि देना और एक बड़ा इंटर्नशिप कार्यक्रम, जिसमें सरकार छात्रवृत्ति देगी। ये सभी उपयोगी हैं और पहले से ही नौकरियां दे रही कंपनियों के लिए मददगार होंगे। यह अलग सवाल है कि उनकी वजह से कंपनियां ज्यादा लोगों को नौकरियां देंगी या नहीं। मेरा सुझाव है कि श्रम आधारित उद्योगों पर ध्यान दिया जाए।

आर्थिक समीक्षा के मुताबिक विनिर्माण में कार्यरत छह करोड़ लोगों में से केवल 1.7 करोड़ कारखानों में काम करते हैं। शेष लोग छोटे उपक्रमों में काम करते हैं। परंतु यह धारणा भी सही है कि कारखानों में ही वह आधुनिक विनिर्माण रोजगार होता है, जिसकी हमें कोशिश करनी चाहिए। ये रोजगार कहां हो सकते हैं?

लाखों में रोजगार तैयार करने की क्षमता तीन क्षेत्रों में है - वस्त्र, खाद्य और इलेक्ट्रॉनिक असेंबली। हमारा वस्त्र क्षेत्र लंबे समय से पिछड़ा हुआ है क्योंकि इस पर समुचित ध्यान नहीं दिया जाता। अब इसमें जरूरी सुधारों की आवश्यकता है। जिस तरह हमने फॉक्सकॉन को भारत में बुला लिया है उसी तरह दुनिया की सबसे बड़ी परिधान कंपनी ली ऐंड फंग को भी बुलाना चाहिए, जो चीन में करीब 10 लाख लोगों को अप्रत्यक्ष रोजगार देती है।

बांग्लादेश में परिधान के एक बड़े कारखाने में 30,000 से 50,000 लोगों को नौकरी मिलती है मगर भारत में केवल 3,000 से 5,000। इसमें इजाफा कैसे किया जा सकता है? डिजाइन और तकनीक के जरिये? या कौशल की मदद से? मुक्त व्यापार समझौते के तहत बाजारों तक शुल्क मुक्त पहुंच भी ऐसा कर सकती है? या श्रम सुधार अथवा एक खास अवधि के लिए श्रमिकों को अधिक आसानी से काम पर रखना?

खाद्य प्रसंस्करण में हम अब भी अंतरराष्ट्रीय मानकों पर बहुत पीछे हैं। दुनिया के 20 फीसदी फल और सब्जियां हमारे देश में उगते हैं लेकिन डेलॉयट के अनुसार हम अपने 4.5 फीसदी फलों और 2.7 फीसदी सब्जियों का ही प्रसंस्करण करते हैं। हम इन क्षेत्रों में दुनिया का नेतृत्व कर सकते हैं।

इलेक्ट्रॉनिक असेंबली में सफलता नई है। अब टाटा इलेक्ट्रॉनिक्स, फॉक्सकॉन और पेगाट्रॉन श्रम के बहुत अधिक इस्तेमाल वाले कारखाने स्थापित कर रही हैं। उत्पादन से जुड़े प्रोत्साहन (पीएलआई) योजना के तहत इलेक्ट्रॉनिक असेंबली उन 14 पीएलआई क्षेत्रों में से इकलौता है, जहां श्रम का बहुत अधिक इस्तेमाल होता है।

आईफोन के खोल बनाना, फोन असेंबल करना, कपड़े बुनना और संतरों का प्रसंस्करण करना ड्रोन और सेमीकंडक्टर बनाने जैसा आकर्षक काम बेशक नहीं हो मगर लाखों लोगों को रोजगार दे सकता है। रोजगार की कारगर रणनीति के लिए श्रम के अधिक इस्तेमाल वाले|